5892

स्वतंत्र साहस का उत्तरदायित्व

आर्थिक प्रजातंत्र के पक्ष से तर्क

एम. आर. मसानी

अक्टूबर १९१७ मे जब लेनिन को यह समाचार मिला कि केरेन्स्की कि सरकार पलायन कर चुकी है तब लेनिन भूमिगत स्थान से बाहर प्रकट हुआ और श्रमिकों तथा सैनिकों के सोवियेट पेट्रोग्रेड के समक्ष उपस्थित हुआ। गिरिजा घर के एक कोने से निकलकर वह मंच पर, पहुंच गया और जैसे ही हर्षध्वनि बन्द हुई कि उसने कहा: "अब हम समाजवादी समाज का संविधान बनाने की ओर कदम बढ़ायेंगे, केवल इस प्रकार से इस सरलता के साथ कि मानो वह गायों के खलिहान बनाने अथवा घोड़ों के लिए अस्तबल बनाने का प्रस्ताव रख रहा हो। उन्तालिस वर्ष बाद क्रुश्चेव को भी हमें उस समाजवादी समाज की अन्धकार मय झलक देनी थी जिसका इस क्रम में निर्माण हुआ।

खतरा

हमारे देश मे भी ऐसे बहुत से लोग है जो कि इस कहानी के उपदेश से प्रभावित हुए बिना अब भी विश्वास करते हैं कि पूर्णतया राष्ट्रीयकरण अथवा समाजवादी अर्थ व्यवस्था का उस प्रकार की राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सह—अस्तित्व चल सकता है जिसकी हमारे संविधान में स्वीकृति दी गयी है और जिसका आज हम उपभोग कर रहे है। यह सच है कि उपरोक्त प्रकार से सोचनेवाले अधिकांश लोग आदर्शवादी विचारधारा द्वारा प्रभावित है जैसा कि ज्यादा न्यायपूर्ण समान सामाजिक व्यवस्था के लिए उनकी उत्कट अभिलाषा है। यह भी सच है कि इस देश के प्रत्येक राजनीतिक दल, कम्युनिस्ट पार्टी को छोडकर, संवैधानिक प्रजातान्त्रिक तरीकों को अपनाने के लिए वचनबद्ध है। फिर भी यह खतरा है कि अच्छे विचारों के बावजूद भी हम अपने को पूर्णतया अप्रजातान्त्रिक रास्तेपर पायें यह पूर्णतया काल्पनिक नहीं कहा जा सकता।

आज के काफी समय पहिले १९४६ में मिश्रीत अर्थ-व्यवस्था सरकार की स्वीकृत नीति बनने के पूर्व बम्बई विश्वविद्यालय के तत्वावधान में एक भाषण के दौरान मे मुझे मिली जुली अर्थव्यवस्था के पक्ष में बोलने का अवसर मिला था मै अब भी यही विश्वास करता हूं कि मिश्रित अर्थ-व्यवस्था ही जिसमें राज्य और स्वतंत्र व्यवसाय बराबरी के दर्जे से स्वतंत्र शक्तियों के रूप में लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्मिलित हों वह प्रणालीही इस देश के लोगों के लिए सर्वोत्तम प्रणाली है। यह दुःख की बात है कि आज किसी को इस निमित दस वर्ष बाद दुहराना पड़ता है और ऐसे समय पर जब की मिश्रीत अर्थव्यवस्था का संतुलन बुरी तरह से बिगाडा जा रहा है. और अब एसा लगता है कि वह हमारी सरकार की निती ही नही' रहेगी.

हाल की घटनाओं को कोष्टक मे प्रयुक्त किये बिना याद करने की आवश्यकता नहीं है। वे घटनाएं हैं जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण, राज्य व्यापार निगम द्वारा आशा के विपरीत और अनुशुचित मार्ग पर आक्रमण जैसे कि लोहा और मन्गानीज कडों का निर्यात, लोहा इस्पात का आयात सीमेण्ट का वितरण। इन घटनाओं मे राज्य का प्रगट होना उतना चिन्ताजनक नहीं जितना की यह तथ्य की प्रत्येक ऐसी घटना के साथ एका धिकार स्थापित करनेका प्रयत्न किया गया है। ये कदम उठाये गये है एक वस्तु को राष्ट्रीयकरण आर्डीनेस द्वारा तथा दूसरी को प्रशसनिक कार्य-वाही द्वारा जिसके संम्बध में सार्वजनिक रूप से अथवा संसद में कोई तर्क वितर्क नहीं किया जैसा कि साधारणता: प्रजातंत्र में होता है।

जिस चिज की ओर इन घटनाओं के समान अधिक ध्यान नहीं गया है वह दूर में दिखलाई पडने वाली समुची कृषक स्वामीत्व प्रणाली की खतरा है जिस पर देश की खेती आधारित है।बिगत कुछ महिनों में सरकार के कुछ महत्वपूर्ण नेताओंने बार बार वक्तव्य दिया है कि भारत जैसे देश मे खेती का कर्मकुशल तरीका सहकारिता द्वारा ही अपनाया जा सकता है। कहा जाता है कि योजना आयोग चीन में कृषि-सम्बन्धी सहकारी संस्थाओं के बहुत तेजीसे हुए विकास द्वारा बडा प्रभावित हुआ है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का पाक्षिक पत्र "आर्थिक समीक्षा" के अप्रेल जून दोनों महीनों के अंकों में अभिप्रायपूर्ण

ढंग से चीनी कम्युनिष्टों का कृषक वर्ग सम्बन्धी चार प्रकार का विश्लेषण दुहराता है–

श्रमिक, मजदूर, छोटा मोटा किसान मध्यम किसान और धनी किसान इन सबके ऊपर चीन को एक सरकारी प्रतिनिधी मण्डल भेजा गया है जो कि कृषि सम्बन्धी सहकारी संस्थाओं के तरीकों का अध्ययन करेगा। जैसा कि इस विषय के विद्यार्थियों को मालूम है कि यह चीनी तरीका रूसी ढंग के सामूहिक खेती के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

इन सब प्रवृत्तियों को ध्यानमें रखकर इस धारणा की प्रबलता का निरीक्षण करना उपयुक्त नहीं माना जा सकता कि वह अर्थ व्यवस्था जहां उद्योग, व्यापार, कृषि सभी पर राज्य का एकाधिकार है वह संसदीय प्रजातंत्र और संविधान की आशा के अनुरूप है। आज औद्योगिक प्रबन्ध एक त्रिकोण के दबाव का केन्द्र बन गया है। वे हैं श्रमिक, पूंजी लगानेवाले और उपभोक्ता। श्रमिक ऊंचे वेतन की मांग करता है पूंजी लगाने वाले ऊंचा विनियोग चाहते हैं उपभोक्ता को अच्छी अच्छी और सस्ती वस्तुएं चाहिए। प्रबंधक को अपना कार्य करने और जीवित रहने के लिए खतरा लेना पड़ेगा और इन तीनों मांगों को अनुभव उपक्रम और कार्यकौशलता से पूरा करना होगा श्रमिक को अपना काम बदलने अथवा हड़ताल पर जाने का अधिकार प्राप्त है। पूंजी लगाने वाला भी जहां और जब चाहे, अपनी पूंजी लगाने के लिए स्वतंत्र है और उपभोक्ता को भी स्वतंत्रता है कि जब चाहे खरीद करे अथवा न खरीदे। इन स्वतंत्रताओं को कार्य रूप में परिणत करने के उपरान्त आत्महित को तो लोकहित में परिवर्तित हो जाता है। यही आर्थिक प्रजातंत्र का तरीका है। दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि जब मार्केट का मांग और पूर्ति सम्बन्धी कानून राज्य द्वारा उद्योग और व्यापार में एकाधिकार स्थापित करके हटा दिया जाएगा तो कैसी परिस्थिति उत्पन्न हो जायेगी। ऐसे एकाधिकार के समक्ष श्रमिक, पूंजी लगानेवाला और उपभोक्ता सभी समान रूप से वस्तुएं छाँटने की स्वतंत्रता खो देते है। श्रमिक से तानाशाह कहेगा मुझे मालूम है तुम्हारे हित में क्या है। जैसा कहा जाए वैसा

काम करो और वेतन के बारे में कुछ मत कहो। पूंजी लगानेवाले से वह कहेगा अपनी पूंजी पर तुम इतनाही कमा सकते हो इससे अधिक नहीं। उपभोक्ता को वह कहेगा 'मै तुम्हे बतलाऊंगा कि क्या खरीदो और क्या नहीं।

यह कहा जा सकता है कि जब तक यह सब ऐसी लोकसभा के नियंत्रण में हो रहा है जो कि लोगो द्वारा निर्वाचित है और उन्हीं के प्रति उत्तरदायी है तो इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। यह तर्क एक प्रश्न उपस्थित करता है। एक बार उपभोक्ता की प्राथमिकता वस्तुओं के उत्पादन और मूल्य नियंत्रण के निश्चयो को प्रभावित करना बन्द कर देती है तो हजारो प्रकार की उत्पादन सम्बधी प्राथमिकताओ को स्थापित करने का निश्चय जिससे कि इस प्रकार की योजना प्रभावशाली सिद्ध हो सके, कौन करेगा? क्या गम्भीरतापूर्वक यह समझा जाए कि सर्वसत्ता संपन्न जनता संसदीय चुनावों द्वारा प्रत्येक पांच वर्षों में आज के प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखने में समर्थ हो सकेगी?

जैसा भी है, हमारे जैसे विशाल देश और मतदाताओ की संख्या तथ साक्षरता और जनजागृति के नीचे-स्तर को देखते हुए भारत में प्रजातंत्र एक कोलम पौधे के समान है जिसकी देखभाल सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए। जबकी, राज्य के कार्य का विस्तार जनता के प्रत्येक आर्थिक और सामाजिक पहलू से टक्कर लेकर हो रहा है, क्या सन्देह नहीं किया जा सकता कि कार्यरूप मे उनकी इच्छाओं को राष्ट्रीय कल्याण के नाम पर जनता पर कौन लादेगा? हमें इस बात का रहस्य जानने के लिए भविष्य की राह देखने की आवश्यकता नहीं है। १३ अगस्त की ससंद के समक्ष अमरीकी सार्वजनिक प्रशासन निष्णात श्री पोल० एच० एप्लेबी की रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने दौरान आलोचना की गयी। श्री. एप्लबी ने लोकसभा और ऑडीटर-जनरल द्वारा राज्य उद्योगों के कार्य संचालन के प्रस्ताविक निरीक्षण को स्पष्टतया अनुचित बताया था। इन निष्णात महोदय ने उपदेश दिया है कि आज भारत को सबसे अधिक आवश्यकता है संयुक्त सचिवों द्वारा अधिक सरकारी शासन चलाने की, उप-सचिवों द्वारा अधिक शासन चलाने की और मैनेजिंग डायरेक्टरों और उनके अन्तर्गत काम करने वालों द्वारा अधिक सरकारी शासन करने की। यही एक सही रास्ता है जिसके द्वारा अधिक सरकारी काम चल सकता है। शोषक भी सबसे अधिक उत्तम विचार कुशल व्यक्तियों को छोड दे तो भी राष्ट्रहीत और आत्महित के साथ

मिला देने में बहुत कम दिक्कत का अनुभव करते है । इसका सर्वोत्तम उदाहरण कुश्चेव द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी के २० वें अधिवेशन में दिए गये उस भाषण में की गयी आश्चर्य-जनक स्वीकारोक्तियों द्वारा मिल जाता है जिसने स्टालिन युग के भीषण कृत्यों परसे आवरण उठाया गया था । कुश्चेव ने कहा स्टालिनको पूर्ण विश्वास था कि यह दमन निर्दोष व्यक्तियोंकी हत्याएँ आदि श्रमिकों के दुश्मनोंके षडयंत्रों और साम्राज्यवादी केम्पके आक्रमण के विरुद्ध श्रमिक वर्गके हितों की रक्षा करनेके लिये आवश्यक था। स्टालिनने इसे श्रमिकवर्ग के हितकी दृष्टिसे देखा, समाज ओर साम्यवादके हितकी दृष्टिसे देखा—यही दुखः की बात है।

कितनी सही है यह बात । किन्तु इससे भी बड़ी दुख की बात तो यह है कि सोविएट की सामाजिक और और आर्थिक प्रणाली इस प्रकार की थी की उसने एक व्यक्ति को बिना बाधा पहुंचाये २० वर्ष पूर्व तक यह अत्याचार जिनका कुश्चेव ने अपने भाषण में जिक्र किया, करने दिया। इतिहास में केवल एक चीज ऐसी है जिसने सत्ता को मर्यादा के भीतर रखा है और वह है विरोधात्मक सत्ता। ऐसी विरोधात्मक सत्ता वर्तमान सरकार के विरोधी के रूप में तभी रह सकती है जबकी समाज में स्वतन्त्र सामाजिक शक्तियो, कृषक स्वामित्व, व्यवसायिक, श्रमिक संगठन कारखाना मालिक, व्यापारी वर्ग, समाचारपत्र, धर्मप्रचारक और अध्यापक, प्रत्येक अपने पैरों पर खड़े हों और अपने अस्तित्व के लिए अपने में से ही किसी एक विशेष शक्ति अथवा राज्य की दया पर निर्भर न रह । एक बार समाज के इन वर्गोंका भी स्टालिन द्वारा उन्मूलन हो गया तो विरोधात्मक शक्ति सर्वदाके लिये जाती रही। वह काल मार्क्स था जिसने एक बार कहा था कि जो जायदाद के मालिक है वे स्वतंत्र है और जिनके पास जायदाद नही है वे स्वतंत्र नहीं है। कितना सही था मार्क्स का कहना । फिर भी तर्कहीन होकर उसने यह साराश निकाला कि स्वतंत्रताका विस्तार जायदादकी समाप्तिपर होगा।

यह हमारे भारतकी प्राचीन नीति का एक सिद्धान्त था कि जो अन्नपर नियंत्रण रखते हैं उन्हें सरकारपर नियंत्रण नहीं रखने देना चाहिये जब कि जिनका पुलिस और सेनापर नियंत्रण था उन्हें कारखानेऔर खेतपरनियंत्रण नहीं रखने दिया जाय, **'जहां राजा व्यापारी वहा प्रजा भिकारी।'** इसपरिपाटी को

भली भांति ध्यानमें रखकर ही हमारे युगसे सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्तियोंने बहुत पहलेही सर्व शक्तिशाली तानाशाही राज्यको देशकी स्वतंत्रताके लिए खतरा समझा था कितनीबार गांधीजीने जोर देकर कहा कि स्वराज्य का अर्थ सेफ्द तानाशाहीके स्थानपर भूरी तानाशाही नहीं है। मेरी राय में उन्होंने एकबार कहा निजी स्वामित्व कि हिंसा राज्यकी हिंसा से कम घायल करनेवाली है। हमें बहुतसी ऐसी घटनाएं मालूम है जहां व्यक्तियोंने 'ट्रस्टीशिप' अपनाया है। किन्तु कोईभी ऐसा उदाहरण नहीं मालूम जहा राज्य निर्धनो के लिए रहा है। आज गांधी जीके सबसे बडे जीवित शिष्य आचार्य विनोबाभावे और जयप्रकाश नारायण दोनोंही हमें कल्याणकारी राज्यके स्थायी रुपसे पंगू बनानेवाले प्रभावके विरुद्ध बारंबार चेतावनी दे रहे हैं।

इस संदर्भ में, हाल के सप्ताहों में स्वतंत्र साहस संघ की स्थापना स्वागत करने योग्य है। मेरे जैसे कितनो के लिए यह इस कारण अधिक रुचि का विषय नहीं है कि वह जनता के सम्मुख स्वतंत्र व्यवसाय की ओर से बोलने की प्रस्तावन रखता है बल्कि इसलिये भी कि वह जनता को शिक्षित करना चाहता है, व्यक्तिगत और राजनैतिक स्वतंत्रता की समाप्ती पर जिसके विस्तृत रुपसे उद्योग, व्यापार स्वतंत्र व्यवसायों, स्वतंत्र प्रेस, स्वतंत्र कारमिक संघ और भूमि स्वामित्व की शक्तियों के हट जाने से सत्यन्न होने की आशंका है। वर्तमान हालत में एकता और सामाजिक न्याय के प्रति उद्दाम वेग के कारण अन्धे बने हुए बहुत से अच्छे लोगों को सही रास्ते पर लाना है यह बतलाकार कि वे किस रास्ते पर जा रहे है। यहां याद आती है उस खच्चर की कहानी जिसे किसान ने बाजार में ले जाकर बडे उचित मूल्यपर बेचा ऐसा पशु जो कि अच्छा तन्दुरुस्त, सीधासादा और परिश्रमी था। किन्तु जब खरीददार उसे हांक कर ले जाने लगा तो खच्चर दौडकर सिधे एक वृक्षसे जा भिडा। यह देखो खरीददारने शीघ्रसे कहा, 'यह खच्चर जो तुमने मुझे बेचा है, अन्धा है।' 'नहीं वह अन्धा नहीं,' किसान ने कहा, वह बहुत अच्छा काम नहीं देता है।

२१ सितम्बर, १९५६ के टाइम्मस आफ इण्डिया से पुनर्प्रकाशित